भारतीय वनवासियों का मूल

अरुण कुमार उपाध्याय*

सारांश

यह मुख्यतः झारखण्ड, ओड़िशा, छत्तीसगढ़ के खनिज क्षेत्रों में बसे वनवासियों के बारे में है। कुछ भारतीय मूल के हैं, कुछ आक्रमणकारी थे, पर अधिकांश खनिज निकालने के लिये देव-असुर सहयोग के लिये मित्र रूप में आये थे। पश्चिम तट के सिद्दियों को छोड़ कर बाकी सभी का मूल १०,००० ई.पू. के जल-प्रलय के पहले का है। पुराणों में भी जल-प्रलय के पूर्व का संक्षिप्त इतिहास ही है। प्राचीन सुमेरिया के इतिहास जिसके अंशों की नकल इलियड से हेरोडोटस तक के ग्रीक लेखकों ने की है, इन वर्णनों का समर्थन करते हैं। इनमें कोई विरोधाभास नहीं है। केवल ब्रिटिश शासन में द्वेष-पूर्ण भाव से इतिहास को नष्ट करने का काम शुरु हुआ जिससे भारतीयों के मुख्य भाग को भी अंग्रेजों की तरह विदेशी आक्रमणकारी सिद्ध किया जा सके। किन्तु इनका कोई आधार नहीं है, केवल कुछ शब्दों तथा चुने हुये पुरातत्त्व अवशेषों के मनमाना निष्कर्ष अपनी इच्छा अनुसार निकाले गये हैं। शबर जाति के लोग वराह अवतार के समय पूर्व भारत के जगन्नाथ क्षेत्र में थे, जिनकी सहायता से हिरण्याक्ष पर आक्रमण हुआ था। उस समय खानों के लिये अधिक खुदाई हुयी। इस काल के शाबर मन्त्र हैं। उसके कुछ समय बाद बलि के समय समुद्र-मन्थन हुआ जिसमें देव और असुर दोनों ने मिल कर खनिज निकाले। पश्चिम एशिया तथा उत्तर अफ्रीका के असुर मुख्यतः झारखण्ड में आये। अफ्रीका के जिम्बाब्वे तथा मेक्सिको में देव गये थे। चण्डी पाठ के अनुसार क्षुष मन्वन्तर में जब राजा सुरथ का शासन था तो कोला विध्वंसियों ने आक्रमण किया। कोल का अर्थ पूरे विश्व में भालू है। रामायण काल के भालू या ऋक्ष यही थे।

मुख्य शब्द : पुराण, इतिहास, रामायण, पुरातत्व, वराहावता

* Retired IPS, भुवनेश्वर, arunupadhyay30@yahoo.in, (M) 9437034172

१. अंग्रेजों द्वारा इतिहास का नाश

अंग्रेजों का मूल उद्देश्य था कि भारत पर अपना स्थायी शासन कर लगातार लूटते रहें। इसके लिये भारत को विभिन्न षेत्रों तथा जातियों में खण्ड खण्ड किया गया तथा अधिकांश भारतीयों को अंग्रेजों की तरह विदेशी आक्रमणकारी सिद्ध किया गया। इसका प्रमाण बनाने के लिये भारत के पश्चिम उत्तर भाग में ही अवशेषों की खुदाई हुयी जहां से विदेशि आर्यों का आक्रमण दिखाना था। इसका कारण था कि मेगास्थनीज आदि ग्रीक लेखकों ने १६००० ई.पू. से भारतीयों को मूल निवासी कहा था तथा ६७७७ ई.पू. से एक ही राज्य व्यवस्था का उल्लेख किया है। उसे झुठलाने के लिये खुदाई का मनमाना निष्कर्ष निकालना जरूरी था। जनवरी १९०० में ही जनमेजय के ५ दान-पत्र मैसूर ऐण्टिकुअरी में प्रकाशित हुये थे जिनकी तिथि २७-११-३०१४ ई.पू. थी। इनकी तिथि को कोलब्रुक ने १५२६ ई. करने के लिये ब्रिटिष ज्योतिषी जी बी ऐरी की मदद लेकर ज्योतिषीय गणना में जालसाजी की। उस समय ग्रहणों की दिर्घकालिक गणना की विधि ज्ञात नहीं थी। १९२७ में ओपोल्जर की पुस्तक में ७०० ई.पू. से ग्रहणों की सूची बनायी थी जिसमें ८ घण्टे तक की भूल थी। १५२६ ई. में अकबर की कैद में रहते हुये केवल स्मरण द्वारा मिथिला के हेमांगद ठक्कुर ने १२०० वर्षों के सभी ग्रहणों की सूची बनायी थी जिसमें केवल २ मिनट का अन्तर है। जनमेजय ने अपने राज्य के २९वें वर्ष में नाग आक्रमण का प्रतिशोध लिया था जिसमें उसके पिता परीक्षित २९ वर्ष पूर्व मारे गये थे। नागों को जहां उसने पहली बार पराजित किया वहां गुरु गोविन्द सिंह जी ने १७०० ई. में एक राममन्दिर बनवाया था जिसमें उस घटना का उल्लेख था। दो नगर पूरीतरह नष्ट हो कर श्मशान बन गये थे-जिनका नाम मोइन-जो-दरो = मुर्दों का स्थान, तथा हड़प्पा = हड्डियों का ढेर हो गया। १७०० ई. तक यह इतिहास स्पष्ट रूप से मालूम था तथा १९०० ई. के प्रकाशित अभिलेखों से भी स्पष्ट था। उसके मात्र २० वर्ष बाद हड़प्पा मोइन-जो-दरो की खुदाई कर मनमाने निष्कर्ष निकाले गये। वहां कोई अभिलेख नहीं मिला है, विभिन्न खिलौने या मूर्त्तियों को अभिलेख मान कर उनको मनमाने ढंग से पढ़ते हैं। जो तथाकथित लिपि अभी तक पढ़ी नहीं जा सकी है, उसे प्रामाणिक मानते हैं। पर जो पुराण ५००० वर्षों से प्रचलित थे उनको काल्पनिक और झूठा मान लिया। इसमें आर्यसमाज से बहुत मदद मिली जिन्होंने पुराणों को म्लेच्छ या उनके द्वारा नियुक्त ब्राह्मण पुजारियों द्वारा लिखित कह दिया। सभी वर्ण एक ही समाज

के अंग हैं, पर ब्रिटिश, आर्य समाज या वामपन्थी उनको अलग अलग देशों या जातियों का मानते हैं। केवल एक ही प्रकार का काम करने वालों से समाज नही चल सकता, पर ऐसे समाज की कल्पना करते हैं। वस्तुतः पुराण भारत के नैमिषारण्यके शौनक संस्था में ३१००-२७०० ई.पू. में लिखे गये थे तथा उनका संशोधन उज्जैन के विक्रमादित्य काल (८२ ई.पू.-१९ ई.) में बेताल भट्ट द्वारा हुआ। शौनक संस्था को महाशाला कहते थे। विक्रमादित्य के केन्द्रों को भी विशाला कहते थे, जिनमें एक उज्जैन में ही था।

अन्य पद्धति थी कि पुराणों की पूरी सूची ले कर उनकी काल गणना को मनमाना कर दिया जाय। इसके लिये भारत की सभी कालगणनाओं को अस्वीकार किया। उज्जैन प्राचीन विश्व के शून्य देशान्तर पर था, अतः प्रायः यहीं के राजा काल गणना (कैलेण्डर) आरम्भ करते थे। अतः उज्जैन के सभी राजाओं. शूद्रक (७५६ ई.पू), विक्रमादित्य (५७ ई. पू.), उनके पौत्र शालिवाहन को काल्पनिक करार दिया। ७५६ ई.पू. से ४५६ ई.पू. के श्रीहर्ष शक तक ३०० वर्ष के मालव गण का उल्लेख सिकन्दर के समय के सभी ग्रीक लेखकों ने किया है, उसका उल्लेख भी मिटा दिया। ४५६ ई.पू. के श्रीहर्ष को ६०५-६४७ ई. का हर्षवर्धन बना दिया। ७८ ई. के शालिवाहन शक कि १२९२ ई.पू. के कश्मीर के ४३वें गोनन्द वंशीय राजा कनिष्क के नाम कर दिया तथा उसे पाश्चात्य शक आक्रमणकारी बना दिया। विक्रमादित्य के प्रति द्वेष रोमन काल से चला आ रहा है क्यों कि उन्होंने जुलियस सीजर को सीरिया के सेला में बन्दी बनाया था तथा उसे उज्जैन ला कर छोड़ द्या था। विल डुरण्ट ने लिखा है कि इसी कारण लौटने पर सीजर की हत्या ब्रुटस ने की थी। पर इसे झुठलाने के लिये रोमन लोगों ने तरह तरह की कहानियां बनाईं कि सीजर मिस्र में ६ मास गायब था या पश्चिम एशिया के अज्ञात स्थानों में घूम रहा था। झूठा इतिहास लिखने की अंग्रेज परम्परा रोमनों के समय से चली आ रही है।

२. आर्य-द्रविड़

उत्तर भारत को आर्य तथा दक्षिण भारत को द्रविड़ कहा जाता है। ऋ गति प्रापणयोः (पाणिनि धातुपाठ १/६७०) से ऋत हुआ है। सत् = अस्तित्त्व, उसका आभास। सत्य = केन्द्रीय सत्य, सीमा और केन्द्र सहित वस्तु। ऋत = सत्य धारणाओं पर आधारित आचरण, फैला पदार्थ जिसका न केन्द्र है न सीमा। सत्य विन्दु है, ऋत क्षेत्र है। इससे अंग्रेजी में एरिया हुआ है। उत्तर भारत में प्रायः समतल भूमि (आर्य क्षेत्र) है जो खेती के

लिये उपयुक्त है। दक्षिण भारत समुद्र (द्रव) के निकट व्यापार प्रधान है। व्यापार में धन का लेन देन होने से वह भी पैसे की तरह बहता है, अतः उसे भी द्रव्य कहते हैं। धन या उसके क्षेत्र को द्रविड़ कहते हैं।

भाषाओं में अन्तर होने का कारण है कि ६ प्रकार दर्शन होने के कारण ६ प्रकार के दर्श वाक् या लिपि हैं। अलग अलग कामों के लिये अलग अलग लिपि हैं। भागवत माहात्म्य के अनुसार ज्ञान (भक्ति से ज्ञान-वैराग्य) की उत्पत्ति द्रविड़ में हुयी, वृद्धि कर्णाटक में हुयी तथा प्रसार महाराष्ट्र तक हुआ। उसका प्रभाव गुजरात आते आते समाप्त हो गया। अप् = द्रव से आकाश में सृष्टि हुयी थी. पृथ्वी पर भी पहले वेद का ज्ञान जहां हुआ उसे द्रविड़ कहा गया। वेद या विश्व का ज्ञान ५ इन्द्रियों द्वारा श्रुति आदि से होता है, अतः इसे श्रुति कहते हैं। श्रुति कर्ण से होती है, अतः इसकी जहां वृद्धि हुयी वह कर्णाटक (आटक = भण्डार, वन) है। मूल शब्द पृथ्वी की वस्तुओं के नाम थे। बाद में उनका विज्ञान विषयों, आकाश तथा अध्यात्म (शरीर के भीतर) अर्थ विस्तार किया गया, वह वृद्धि हुयी। अलग-अलग ध्वनि या शब्दों का मेल मलयालम है। किसी परिवेश को महर् (महल्) कहते हैं, अतः ज्ञान का विस्तार क्षेत्र महाराष्ट्र हुआ। विस्तार की माप गुर्जर (गुर्ज = लाठी) है। बाद में भगवान् कृष्ण के अवतार के समय इसका उत्तर भारत में प्रचार हुआ।

गणिती तथा यान्त्रिक विश्व का वर्णन सांख्य के २५ तत्त्वों से है, उसके अनुरूप २५ अक्षरों की लिपि है। इसमें चेतना या ज्ञान तत्त्व मिलाने से ६ x ६ = ३६ तत्त्व शैव दर्शन के हैं, जिसके अनुरूप ३६ अक्षरों की लैटिन, अरबी, गुरुमुखी लिपि हैं। इन्द्र ने ध्वनि विशेषज्ञ मरुत् की सहायता से शब्दों का ४९ मूल ध्वनियो में विभाजन (व्याकृत) किया। यह ४९ मरुतों केअनुरूप ४९ अक्षरों की देवनागरी लिपि है। इसमें क से ह तक के ३३ व्यञ्जन ३३ देवताओं के चिह्न हैं। यह चिह्न रूप में देवों का नगर होने के कारण देवनागरी है। आज भी यह इन्द्र की पूर्व दिशा से पश्चिम-उत्तर मरुत दिशा तक (भारत में) प्रचलित है। ८ x ८ कला के अनुरूप ६४ अक्षरों की ब्राह्मी लिपि है। वेद में विज्ञान के विशेष चिह्नों के कारण $(८ + ९)^{२}$ = २८९ चिह्न हैं। इनमें ३६ x ३ = १०८ स्वर, ३६ x ५ = १८० व्यञ्जन तथा १ अनिर्णीत ॐ है। व्योम (तिब्बत) से परे (चीन -जापान में) लिपि सहस्राक्षरा है। शब्द के अर्थ ७ संस्थाओं के अनुसार बदलते हैं। तो आधिदैविक और आध्यात्मिक के

अतिरिक्त पृथ्वी पर ५ संस्था होंगी। व्यवसाय, भूगोल, इतिहास, विज्ञान तथा प्रचलन-ये संस्थायें हैं।

दक्षिण के ज्ञान की उत्पत्ति होने के कारण प्राचीन स्वायम्भुव मनु (२९,१०० ई.पू.) काल का पितामह सिद्धान्त वहां प्रचलित है। वैवस्वत मनु (१३९०० ई.पू.) काल का सूर्य सिद्धान्त उत्तर भारत में है। पितामह सिद्धान्त का पुनरुद्धार ३६० कलि (२७४२ ई.पू.) में आर्यभट ने किया। पितामह सिद्धान्त को आर्य सिद्धान्त कहते थे अतः आज भी आर्यभट के निवास स्थान में आर्य (अजा) का अर्थ पितामह है। वेद शाखाओं में भी पुरानी परम्परा ब्रह्म सिद्धान्त है-स्वायम्भुव मनु ही पितामह ब्रह्मा थे। वैवस्वत मनु काल की आदित्य परम्परा है जिसका याज्ञवल्क्य ने किया। प्राचीन कृष्ण यजुर्वेद की ८६ शाखायें सभी द्वीपों में थीं। बाद के शुक्ल यजुर्वेद की १५ शाखा केवल भारत में थीं (शौनक का चरण व्यूह)।

वेद के कई शब्द केवल दक्षिण भारत में ही हैं। ऋग्वेद के प्रथम सूक्त में ही रात-दिन के लिये दोषा-वस्ता का प्रयोग है जिनका प्रयोग केवल दक्षिण में है। नगर के लिये उरु या उर का प्रयोग भी केवल दक्षिण में है।

३. वनवासियों का मूल

इनका मूल स्रोत ४ प्रकार का है--(१) भारत के खनिज कर्मी, (२) कूर्म अवतार के समय आये अफ्रीकी असुर, (३) पूर्व समुद्र के आक्रमणकारी, तथा (४) पुराने शासक।

खनिज कर्म-खनिज कर्म करने वाले को शबर या सौर कहते हैं। मीमांसा दर्शन की सबसे पुरानी व्याख्या शबर मुनि की है। शिव द्वारा शबर-मन्त्र दिये गये थे जो बिना किसी अर्थ के भी फल देते हैं। राजा इन्द्रद्युम्न के समय जगन्नाथ की लुप्त मूर्त्ति को भी विद्यापति शबर ने खोजा था जिनके वंशज आज भी उनके उपासक हैं तथा उनको स्वाईं महापात्र कहा जाता है। शूकर का अपभ्रंश सौर (हिन्दी में सुअर) जो अपने मुंह या दांतों से मिट्टी खोदता है। अतः मिट्टी खोदनेवाले को शुकर या शबर बोलते हैं। यह नाम पूरे विश्व में प्रचलित था क्योंकि हिब्रू में भी इसका यही अर्थ था जिसका कई स्थान पर बाईबिल में प्रयोग हुआ है-हिब्रू की औनलाइन डिक्शनरी के अनुसार-

7665. shabar (shaw-bar') A primitive root; to burst (literally or figuratively) -- break (down, off, in pieces, up), broken((-hearted)), bring to the birth, crush, destroy, hurt, quench, X quite, tear, view (by mistake for sabar).

शबर के लिये वैखानस शब्द का भी प्रयोग है। विष्णु-सहस्रनाम का ९८७ वां नाम वैखानस है जिसका अर्थ शंकर भाष्य के अनुसार शुद्ध सत्त्व के लिये ग्रन्थों के भीतर प्रवेश है। यह पाञ्चरात्र दर्शन का मुख्य आगम है तथा एक वैखानस श्रौत सूत्र भी है।

४. समुद्र मन्थन के सहयोगी

वामन ने बलि से इन्द्र के लिये तीनों लोक ले लिये तो कई असुर असन्तुष्ट थे कि देवता युद्ध कर के यह राज्य नहीं ले सकते थे तथा छिटपुट युद्ध जारी रहे। तब विष्णु अवतार कूर्म ने समझाया कि यदि उत्पादन हो तभी उस पर अधिकार के लिये युद्ध का लाभ है। अतः उसके लिये पृथ्वी का दोहन जरूरी है। पृथ्वी की सतह का विस्तार ही समुद्र है। महाद्वीपों की सीमा के रूप में ७ समुद्र हैं, पर गौ रूपी पृथ्वी से उत्पादन के लिये ४ समुद्र (मण्डल) हैं-जुगोप गोरूप धरामिवोर्वीम् (कालिदास का रघुवंश, २/४)। इनको आजकल स्फियर (sphere) कहते हैं-Lithosphere (पृथ्वी की ठोस सतह), Hydrosphere (समुद्र), Biosphere (पृथ्वी की उपरी सतह जिस पर वृक्ष उगते हैं), Atmosphere (वायुमण्डल). पृथ्वी की ठोस सतह को खोदकर उनसे धातु निकालने को ही समुद्र-मन्थन कहा गया है। बिल्कुल ऊपरी सतह पर खेती करना दूसरे प्रकार के समुद्र का मन्थन है। भारत में खनिज का मुख्य स्थान बिलासपुर (छत्तीसगढ़) से सिंहभूमि (झारखण्ड) तक है, जो नकशे में कछुए के आकार का है। खनिज कठोर ग्रेनाइट चट्टानों के नीचे मिलते हैं जिनको कूर्म-पृष्ठ भूमि कहते हैं, अर्थात् कछुये की पीठ की तरह कठोर। इसके ऊपर या उत्तर मथानी के आकार पर्वत है जो गंगा तट तक चला गया है-यह मन्दार पर्वत कहलाता है जो समुद्र मन्थन के लिये मथानी था। उत्तरी छोर पर वासुकिनाथ तीर्थ है, नागराज वासुकि को मन्दराचल घुमाने की रस्सी कहा गया है। वह देव-असुरों के सहयोग के मुख्य संचालक थे। असुर वासुकि नाग के मुख की तरफ थे जो अधिक गर्म है। यह खान के भीतर का गर्म भाग है। लगता है कि उस युग में असुर खनन में अधिक दक्ष थे अतः उन्होंने यही काम लिया। देव विरल

खनिजों (सोना, चान्दी) से धातु निकालने में दक्ष थे, अतः उन्होंने जिम्बाबवे में सोना निकालने का काम तथा मेक्सिको में चान्दी का लिया। पुराणों में जिम्बाबवे के सोने को जाम्बूनद-स्वर्ण कहा गया है। इसका स्थान केतुमाल (सूर्य-सिद्धान्त, अध्याय १२ के अनुसार इसका रोमक पत्तन उज्जैन से ९०° पश्चिम था) वर्ष के दक्षिण कहा गया है। यहं हरकुलस का स्तम्भ था, अतः इसे केतुमाल (स्तम्भों की माला) कहते थे। बाइबिल में राजा सोलोमन की खानें भी यहीं थीं। मेक्सिको से चान्दी आती थी अतः आज भी इसको संस्कृत में माक्षिकः कहा जाता है। चान्दी निकालने की विधि में ऐसी कोई क्रिया नहीं है जो मक्खियों के काम जैसी हो, यह मेक्सिको का ही पुराना नाम है। सोना चट्टान में सूक्ष्म कणों के रूप में मिलता है, उसे निकालना ऐसा ही है जैसे मिट्टी की ढेर से अन्न के दाने चींटियां चुनती हैं। अतः इनको कण्डूलना (= चींटी, एक वनवासी उपाधि) कहते हैं। चींटी के कारण खुजली (कण्डूयन) होता है या वह स्वयं खुजलाने जैसी ही क्रिया करती है, अतः सोने की खुदाई करने वाले को कण्डूलना कहते थे। सभी ग्रीक लेखकों ने भारत में सोने की खुदाई करने वाली चींटियों के बारे में लिखा है। मेगस्थनीज ने इस पर २ अध्याय लिखे हैं। समुद्र-मन्थन में सहयोग के लिये उत्तरी अफ्रीका से असुर आये थे, जहां प्रह्लाद का राज्य था, उनको ग्रीक में लिबिया (मिस्र के पश्चिम का देश) कहा गया है। उसी राज्य के यवन, जो भारत की पश्चिमी सीमा पर थे, सगर द्वारा खदेड़ दिये जाने पर ग्रीस में बस गये जिसको इओनिआ कहा गया (हेरोडोटस)।

विष्णु पुराण(३/३)-सगर इति नाम चकार॥३६॥ पितृराज्यापहरणादमर्षितो हैहयतालजङ्घादि वधाय प्रतिज्ञामकरोत्॥४०॥प्रायशश्च हैहयास्तालजङ्घाञ्जघान॥४१॥ शकयवनकाम्बोजपारदपह्लवाः हन्यमानास्तत्कुलगुरुं वसिष्ठं शरणं जग्मुः॥४२॥यवनान्मुण्डितशिरसोऽर्द्धमुण्डिताञ्छकान् प्रलम्बकेशान् पारदान् पह्लवान् श्मश्रुधरान् निस्स्वाध्यायवषट्कारानेतानन्यांश्च क्षत्रियांश्चकार॥४७॥

अतः वहां के खनिकों की उपाधि धातु नामों के थे, वही नाम ग्रीस में ग्रीक भाषा में गये तथा आज भी इस कूर्म क्षेत्र के निवासिओं के हैं। इनके उदाहरण दिये जाते हैं-

(१) मुण्डा-लौह खनिज को मुर (रोड के ऊपर बिछाने के लिये लाल रंग का मुर्रम) कहते हैं। नरकासुर को भी मुर कहा गया है क्योंकि उसके नगर का घेरा लोहे का था (भागवत पुराण, स्कन्ध ३)-वह देश आज मोरक्को है तथा वहां के निवासी मूर हैं। भारत में भी

लौह क्षेत्र के केन्द्रीय भाग के नगर को मुरा कहते थे जो पाण्डु वंशी राजाओं का शासन केन्द्र था (वहां के पट्टे बाद में दिये गये हैं)। बाद में यहां के शासकों ने पूरे भारत पर नन्द वंश के बाद शासन किया जिसे मौर्य वंश कहा गया। मुरा नगर अभी हीराकुद जल भण्डार में डूब गया है तथा १९५६ में वहां का थाना बुरला में आ गया। मौर्य के २ अर्थ हैं-लोहे की सतह का क्षरण (मोर्चा) या युद्ध क्षेत्र (यह भी मोर्चा) है। फारसी में भी जंग के यही दोनों अर्थ हैं। लौह अयस्क के खनन में लगे लोगों की उपाधि मुण्डा है। यहां के अथर्व वेद की शाखा को भी मुण्डक है, जिसका मुण्डक उपनिषद् उपलब्ध है। उसे पढ़ने वाले ब्राह्मणों की उपाधि भी मुण्ड है (बलांगिर, कलाहाण्डी)

(२) हंसदा-हंस-पद का अर्थ पारद का चूर्ण या सिन्दूर है। पारद के शोधन में लगे व्यक्ति या खनिज से मिट्टी आदि साफ करने वाले हंसदा हैं।

(३) खालको-ग्रीक में खालको का अर्थ ताम्बा है। आज भी ताम्बा का मुख्य अयस्क खालको (चालको) पाइराइट कहलाता है।

(४) ओराम-ग्रीक में औरम का अर्थ सोना है।

(५) कर्कटा-ज्यामिति में चित्र बनाने के कम्पास को कर्कट कहते थे। इसका नक्शा (नक्षत्र देख कर बनता है) बनाने में प्रयोग है, अतः नकशा बना कर कहां खनिज मिल सकता है उसका निर्धारण करने वाले को करकटा कहते थे। पूरे झारखण्ड प्रदेश को ही कर्क-खण्ड कहते थे (महाभारत, ३/२५५/७)। कर्क रेखा इसकी उत्तरी सीमा पर है, पाकिस्तान के करांची का नाम भी इसी कारण है।

(६) किस्कू-कौटिल्य के अर्थशास्त्र में यह वजन की एक माप है। भरद्वाज के वैमानिक रहस्य में यह ताप की इकाई है। यह् उसी प्रकार है जैसे आधुनिक विज्ञान में ताप की इकाई मात्रा की इकाई से सम्बन्धित है (१ ग्राम जल ताप १° सेल्सिअस बढ़ाने के लिये आवश्यक ताप कैलोरी है)। लोहा बनाने के लिये धमन भट्टी को भी किस्कू कहते थे, तथा इसमें काम करने वाले भी किस्कू हुए।

(७) टोप्पो-टोपाज रत्न निकालनेवाले।

(८) सिंकू-टिन को ग्रीक में स्टैनम तथा उसके भस्म को स्टैनिक कहते हैं।

(९) मिंज-मीन सदा जल में रहती है। अयस्क धोकर साफ करनेवाले को मीन (मिंज) कहते थे-दोनों का अर्थ मछली है।

(१०) कण्डूलना-ऊपर दिखाया गया है कि पत्थर से सोना खोदकर निकालने वाले कण्डूलना हैं। उस से धातु निकालने वाले ओराम हैं।

(११) हेम्ब्रम-संस्कृत में हेम का अर्थ है सोना, विशेषकर उससे बने गहने। हिम के विशेषण रूप में हेम या हैम का अर्थ बर्फ़ भी है। हेमसार तूतिया है। किसी भी सुनहरे रंग की चीज को हेम या हैम कहते हैं। सिन्दूर भी हैम है, इसकी मूल धातु को ग्रीक में हाईग्रेरिअम कहते हैं जो सम्भवतः हेम्ब्रम का मूल है।

(१२) एक्का या कच्छप-दोनों का अर्थ कछुआ है। वैसे तो पूरे खनिज क्षेत्र का ही आकार कछुए जैसा है, जिसके कारण समुद्र मन्थन का आधार कूर्म कहा गया। पर खान के भीतर गुफा को बचाने के लिये ऊपर आधार दिया जाता है, नहीं तो मिट्टी गिरने से वह बन्द हो जायेगा। खान गुफा की दीवाल तथा छत बनाने वाले एक्का या कच्छप हैं।

५. आक्रमणकारी

दुर्गा सप्तशती, अध्याय १ में लिखा है कि स्वारोचिष मनु (द्वितीय मनु) के समय भारत के चैत्य वंशी राजा सुरथ के राज्य को कोला विध्वंसिओं ने नष्ट कर दिया था, यह प्रायः १७,५०० ईसा पूर्व की घटना है, उसके बाद १० युग (३६०० वर्ष) तक असुर प्रभुत्व था तथा वैवस्वत मनु का काल १३९०० ईसा पूर्व में आरम्भ हुआ। प्रायः १७००० ईसा पूर्व में राजा पृथु के समय पूरी पृथ्वी का दोहन (खनिज निष्कासन) हुआ था, जिसके कारण इसको पृथ्वी (पृथु का विशेषण) कहा गया। पृथु का जन्म उनके पिता वेन के हाथ के मन्थन से हुआ था। दाहिने हाथ से निषाद तथा बायें हाथ से कोल तथा भील उत्पन्न हुए (भागवत पुराण, ४/१४)। अतः यह भारत के पूर्वी भाग के हो सकते हैं। भारत के नक्शे पर हिमालय की तरफ सिर रखकर सोने पर बायां हाथ पूर्व तथा दाहिना हाथ पश्चिम होगा। दाहिना हाथ (दक्ष) का यज्ञ हरिद्वार में था जहां पश्चिमी भाग आरम्भ होता है। पूर्वी भाग में कोल लोगों का क्षेत्र ऋष्यमूक या ऋक्ष पर्वत कहा जाता है जिसका अर्थ भालू है। कोला का अर्थ पूरे विश्व में भालू है। पूर्वी साइबेरिआ कोला प्रायद्वीप है, जो भालू क्षेत्र कहा जाता है, आस्ट्रेलिआ मॆ यह भालू की एक जाति है, अमेरिका में भी इसका अर्थ

भालू होता था, इनका प्रिय फल आज भी कोका-कोला कहा जाता है। भालू की विशेषता है कि वह बहुत जोर से अगले दोनों पैरों से आदमी के हाथ की तरह किसी को पकड़ता है। अतः कोलप (कोला द्वारा रक्षित) का अर्थ ओड़िया में ताला है। बहुमूल्य वस्तु ताले में रखी जाती है अतः लक्ष्मी (सम्पत्ति) को कोलापुर निवासिनी कहा गया है। महाराष्ट्र में महालक्ष्मी मन्दिर कोल्हापुर में है। अतः सम्पत्ति, धातु भण्डार आदि की रक्षा करने वाले कोला हैं। इसी काम को करनेवाले अन्य देशों के लोग भी कोला थे, वे अलग-अलग जाति के हो सकते हैं, पर काम समान था। इसी प्रकार समुद्र पत्तन की व्यवस्था करने वाले वानर थे क्योंकि तट पर जहाज को लगाने के लिये वहां बन्ध बनाना पड़ता है, जिसे बन्दर कहते हैं। आज भी जहाज के पत्तन को बन्दर या बन्दरगाह कहते हैं। वानर को भी बन्दर कहते हैं। राम को भी समुद्र पारकर आक्रमण करने के लिये वानर (पत्तन के मालिक) तथा भालू (धातुओं के रक्षक) की जरूरत पड़ी थी। कोला जाति के नाम पर ओड़िशा के कई स्थान हैं-कोलाबिरा थाना (ओड़िशा के झारसूगुडा, झारखण्ड के सिमडेगा-दोनों जिलों में), कोलाब (कोरापुट)। मुम्बई में भी एक समुद्र तट कोलाबा है।

६. पुराने शासक

पठार को कन्ध या पुट (प्रस्थ) कहते थे जैसे कन्ध-माल या कोरापुट। वहां के निवासी को भी कन्ध कहते थे। इनका राज्य किष्किन्धा था। उत्तरी भाग में बालि का प्रभुत्व था- जो ओड़िशा के बालिगुडा, बालिमेला आदि हैं। दक्षिणी भाग में सुग्रीव का प्रभुत्व था।

भारत का गण्ड भाग विन्ध्याचल में गोण्डवाना है, वहां के निवासी गोण्ड। इसकी पश्चिमी सीमा गुजरात का गोण्डल (राजकोट जिला) है। उत्तर प्रदेश के पूर्वी भाग में भी एक जिला गोण्डा है पर वह गोनर्द (गाय के खुर से दबा कीचड़ या काली मिट्टी) का अपभ्रंश है जहां पतञ्जलि का जन्म हुआ था। गोण्ड लोग गोण्डवाना के शसक थे। मुगल शासक अकबर को अन्तिम चुनौती यहां की गोण्ड रानी दुर्गावती ने दी थी, उनके पति ओड़िशा के कलाहाण्डी में लाञ्जिगढ़ के वीरसिंह थे (वृन्दावनलाल वर्मा का उपन्यास-रानी दुर्गावती)। गोण्ड जाति में राज परिवार के व्यक्ति राज-गोण्ड कहलाते हैं। इन् लोगों ने सत्ता से समझौता नहीं किया अतः ये दरिद्र या दलित हो गये। पर इनके जो नौकर अकबर से मिलकर उसके लिये जासूसी करते थे, वे पुरस्कार में राज्य पाकर बड़े होगये। रानी दुर्गावती के पुरोहित को काशी का तथा उनके रसोइआ महेश ठाकुर को मिथिला

का राज्य मिला जो नमक-हरामी-जागीर कहा गया (विश्वासघात के लिये)। ७. कालगणना-इतिहास का मुख्य काल-चक्र हिमयुग का चक्र है। पृथ्वी का मुख्य स्थल भाग उत्तर गोलार्ध में है, जिसमें जल-प्रलय तथा हिम युग का चक्र आता है। दो कारणों से इस भाग में अधिक गर्मी होती है-जब उत्तरी ध्रुव सूर्य की ताफ झुका हो, या जब कक्षा में पृथ्वी सूर्य के निकटतम हो। जब दोनों एक साथ हों, तो जल प्रलय होगा। जब दोनों विपरीत दिशा में हों, तो हिम युग होगा। उत्तरी ध्रुव की दिशा २६,००० वर्ष में विपरीत दिशा में चक्कर लगाती है। पृथ्वी कक्षा का निकटतम विन्दु १ लाख वर्ष में १ चक्कर लगाता है। दोनों गतियों का योग (विपरीत दिशा में) २१,६०० वर्ष में होता है, जो १९३२ में मिलांकोविच का सिद्धान्त था। भारत में निकट कक्षा विन्दु का दीर्घकालिक चक्र लिया गया है, जो ३१२,००० वर्ष में होता है। इसके अनुसार २४,००० वर्ष का चक्र होगा। इसके २ भाग हैं, पहले १२,००० वर्ष का अवसर्पिणी युग होगा जिसके ४ खण्ड हैं-सत्य युग ४८०० वर्ष, त्रेता ३६००, द्वापर २४००, कलि १२०० वर्ष। इनका १/१२ भाग पूर्व तथा शेष सन्ध्या है। दूसरा भाग उत्सर्पिणी है जिनमें ये ४ खण्ड युग विपरीत क्रम से आते हैं-कलि, द्वापर, त्रेता, सत्य युग। पुराणों और वेदों के अनुसार २४,००० वर्ष के युगों का तीसरा चक्र चल रहा है। तीसरे चक्र में अवसर्पिणी का कलियुग ३१०२ ई.पू. में आरम्भ हुआ। इसके अनुसार-

प्रथम चक्र-६१९०२-३७९०२ ई.पू.-देव पूर्व सभ्यता। चीन में याम देवता। मणिजा सभ्यता। खनिज दोहन का आरम्भ। ४ मुख्य वर्ग-साध्य, महाराजिक, आभास्वर, तुषित-आज के ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र जैसे।

द्वितीय चक्र-३७९०२-१३९०२ ई.पू.-देव युग

अवसर्पिणी-३७९०२-२५९०२ ई.पू.-सत्य ३३१०२ ई.पू. तक। त्रेता-२९,५०२ ई.पू तक-इसमें जल प्रलय हुआ था। इसके बाद २९१०२ ई.पू. में स्वायम्भुव मनु। द्वापर-२७,१०२ .पू. तक। कलि २५,९०२ ई.पू. तक।

उत्सर्पिणी-कलि-२४, ७०२ ई.पू. तक। द्वापर-२२,३०२ ई.पू. तक। त्रेता-१८,७०२ ई.पू. तक-इसमें हिम युग हुआ था। सत्ययुग-१३९०२ ई.पू. तक-हिमयुग के बाद कश्यप काल (१७५०० ई.पू.) से असुर प्रभुत्व)

तृतीय चक्र-मनुष्य युग-१३९०२ ई.पू. से १०,०९९ ई. तक।

अवसर्पिणी-सत्ययुग-१३९०२-९१०२ ई.पू. तक-वैवस्वत मनु से आरम्भ। त्रेता-५५०२ ई.पू. तक। द्वापर-३१०२ ई.पू. तक। कलि १९०२ ई.पू. तक।

उत्सर्पिणी-कलि-७०२ ई.पू. तक। द्वापर-१६९९ ई. तक। त्रेता-५२९९ ई. तक। त्रेता विज्ञान प्रगति का युग कहा गया है। इसकी सन्धि १६९९-१९९९ ई. तक औद्योगिक क्रान्ति तथा उसके बाद सूचना क्रान्ति का युग चल रहा है। सत्य युग १००९९ ई. तक।

इस काल चक्र की सभी अवसर्पिणी त्रेता में जल प्रलय तथा उत्सर्पिणी त्रेता में हिम युग हुआ है, अतः यह आधुनिक मिलांकोविच सिद्धान्त से अधिक शुद्ध है।

२ और ऐतिहासिक युग गणना हैं। ब्रह्माण्ड पुराण के अनुसार महाभारत के बाद ३१०२ ई.पू. में कलि आरम्भ के समय स्वायम्भुव मनु से २६००० वर्ष का मन्वन्तर (ऐतिहासिक) बीत चुका था जिसमें ७१ युग थे। अतः स्वायम्भुव मनु का काल २९१०२ ई.पू. हुआ। यहां १ युग = ३६० वर्ष प्रायः। मत्स्य पुराण, अध्याय २७३ के अनुसार, स्वायम्भुव से वैवस्वत मनु तह ४३ युग = प्रायः १६००० वर्ष तथा उसके बाद ३१०२ ई.पू. तक प्रायः १०,००० वर्ष या २८ युग बीते थे। खण्ड युगों की गणना के अनुसार वैवस्वत मनु से ३१०२ ई.पू. कलि आरम्भ तक १०८०० वर्ष थे। इनमें ३६० वर्ष के ३० युग होंगे। बीच में १०००० ई.पू. से प्रायः १००० वर्ष के जल प्रलय काल में प्रायः २ युग लेने पर ठीक २८ युग बाकी हैं। इनमें वायु पुराण, अध्याय ४९९ के अनुसार दत्तात्रेय १०वें युग, मान्धाता १५वें, परशुराम १९वें, राम २४वें, व्यास २८वें युग में हुये थे। वैवस्वत मनु से पूर्व १० युग = ३६०० वर्ष तक असुर प्रभुत्व था, जो कश्यप काल से अर्थात् १७५०० ई.पू. में आरम्भ हुआ। इसके कुछ काल बाद वराह अवतार के समय शबर जाति का प्रभुत्व था। राजा बलि के काल में वामन अवतार, कूर्म अवतार तथा कार्त्तिकेय का युग था। अतः बलि को दीर्घजीवी कहा है। कार्त्तिकेय के समय क्रौञ्च द्वीप पर आक्रमण हुआ था। इसका समय महाभारत, वन पर्व (२३०/८-१०) में दिया है कि उत्तरी ध्रुव अभिजित् से दूर हट गया था तथा धनिष्ठा नक्षत्र से वर्षा होती थी जब वर्ष का आरम्भ हुआ। यह प्रायः १५,८०० ई.पू. का काल है। इसके १५,५०० वर्ष बाद सिकन्दर के आक्रमण के समय मेगास्थनीज ने लिखा है कि भारत खाद्य तथा अन्य सभी चीजों में स्वावलम्बी है अतः इसने पिछले १५००० वर्षों में किसी देश पर आक्रमण नहीं किया है।

तीसरी गणना सप्तर्षि वर्ष की है। सप्तर्षि चक्र २७०० सौर वर्ष = ३०३० मानुष वर्ष (३२७ दिनों का १२ चान्द्र परिक्रमा समय) का है। ३ सप्तर्षि चक्र का ध्रुव सम्वत्सर = ८१०० वर्ष का है। ३१७६-३०७६ ई.पू. तक सप्तर्षि मघा नक्षत्र में थे। विपरीत दिशा में चलते हुये जब सप्तर्षि मघा से निकले तब युधिष्ठिर का कश्मीर में देहान्त हुआ (कलि वर्ष २५) और वहां सप्तर्षि या लौकिक वर्ष आरम्भ हुआ। आन्ध्र वंश के अन्त के समय इनका १ चक्र पूर्ण हुआ (३७६ ई.पू.-उसके प्रायः ५० वर्ष बाद आन्ध्र वंश का राज्य समाप्त हुआ। अगला चक्र २०२३ ई. में पूरा होगा जब कुरान के अनुसार इस्लाम का अन्त होगा। ३०७६ ई.पू से १ ध्रुव = ८१०० वर्ष पूर्व वैवस्वत यम का काल था जिनके बाद ब्रह्म पुराण तथा अवेस्ता के अनुसार जल प्रलय हुआ था। उसके ८१०० वर्ष पूर्व १९२७६ ई.पू. में क्रौञ्च प्रभुत्व (उत्तर अमेरिका) था, अतः इसे क्रौञ्च सम्वत्सर भी कहा गया है। इससे ८१०० वर्ष पूर्व २७,३७६ ई.पू. में राजा ध्रुव का देहान्त हुआ था जब ध्रुव मघा नक्षत्र से निकले। इसके प्राय ११८०० वर्ष बाद कार्त्तिकेय काल में ध्रुव की दिशा धनिष्ठा में थी।

सन्दर्भ

E. Vedavyasa- ‘Astronomical Dating of the Mahabharata War’, 1986, chapter 17.

Kota Venkatachalam- ‘Age of the Mahabharata War’ written in 1957-59 and published by his son in 1991.

ऐतिहासिक कालगणना-मेरी पुस्तक सांख्य सिद्धान्त अध्याय ३ में वर्णित है। (नाग प्रकाशन, दिल्ली, २००६)

भीष्म संस्था के १८ खण्ड के भारतीय इतिहास के खण्ड २ पृष्ठ ३३४-३३५, खण्ड ४ पृष्ठ ९०-९१ में जनमेजय काल आदि का वर्णन है। Sripad Kulkarni in his 18 volume book-‘The study of Indian History and Culture’ 1988, published from BHISHMA, Thane, Mumbai.